SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

भवभूति के रूपको में आर्थिक जीवन

प्रभाकर कुमार, शोधार्थी, संस्कृत विभाग
पटना विश्वविद्यालय, बिहार, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Author

प्रभाकर कुमार, शोधार्थी

E-mail : prabhakar2871@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 21/06/2024
Revised on : 13/08/2024
Accepted on : 22/08/2024
Overall Similarity : 00% on 14/08/2024

शोध सार

प्राचीन समय से ही समाज का उत्थान मनुष्य के आर्थिक जीवन की सम्पन्नता, समुन्नति और सुख–सुविधा पर निर्भर करता रहा है। मनुष्य का भैतिक और लौकिक सुख उसके जीवन के आर्थिक विकास से प्रभावित होता रहा है। आर्थिक जीवन का मूलाधार कृषि, पशुपालन, व्यापार होता है जिसे भारतीय शास्त्रकारों ने वार्ता के अन्तर्गत विवेचन किया है। आज भारत ही नहीं अपितु विश्व का समाज इन्हीं आधारों पर स्थिर है। अर्थव्यवस्था समाज को पुष्ट और स्वस्थ बनाने में पूर्ण सहयोग प्रदान करती है और इससे व्यक्ति और समाज दोनों का विकास होता है। आर्थिक कार्यक्रम व्यक्ति का मानवीय सम्बन्ध ही नहीं अपितु सामाजिक सम्बन्ध भी अभिव्यक्त करता है। वह अपने कार्यों और योजनाओं से अपनी तथा अपने परिवार और समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

मुख्य शब्द

कृषि व्यवस्था, व्यापार व्यवस्था, पशुपालन, कर व्यवस्था, व्यावसायिक कर्म, वन और औषधि.

प्रस्तावना

भारतीय समाज का आर्थिक विकास 'पुरुषार्थ' के जीवन–दर्शन के माध्यम से हुआ है जिसमें 'अर्थ' एक प्रधान तत्त्व के रूप में स्वीकार किया गया है। मनुष्य की मनोवांछित सामग्री की पूर्ति 'अर्थ' द्वारा ही होती है। अतः 'अर्थ' मनुष्य के भौतिक और लौकिक सुख को प्रदान करने वाला विशिष्ट तत्त्व माना गया है। महाभारत में अर्थ को त्रिवर्ग के प्रधान आधार–तत्त्व के रूप में माना गया है। कौटिल्य, याज्ञवल्क्य, नारद इत्यादि विचारकों ने इसकी महत्ता को देखते हुए 'अर्थशास्त्र' की प्रतिष्ठा की है। स्पष्ट है कि अर्थार्जन में धन का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। धन–सम्पत्ति का आंकलन अर्थ के ही रूप में किया

गया है जो मनुष्य की भौतिक उपलब्धि से संयुक्त रही है।

महाकवि भवभूति का प्रादुर्भाव आज से लगभग 1200 वर्ष पूर्व अर्थात् आठवीं सदी के पूर्वार्ध में हुआ था। उस समय भारतवर्ष में अनेक सामन्त, राजा शासन करते थे। वर्णनों से सिद्ध है कि उस समय कश्मीर में ललितादित्य तथा कन्नौज में यशोवर्मा राज्य करते थे, क्योंकि राजतरंगिणी में लिखा है:

''कविर्वाक्पतिराजंश्रीभवभूत्यादिसेवितः।
जितो ययौ यशोवर्मा तत्पदस्तुतिवन्द्यताम्।।''[1]

इससे ज्ञात होता है कि अनेक राजा अपने–अपने वैभव–विस्तार में संलग्न था। प्रजा अमन–चैन की जिन्दगी बसर कर रही थी। सुख–शान्ति रहने के कारण प्रजा धार्मिक, सामाजिक कार्यों में संलग्न थी। प्रजा को उदर–पोषण की चिन्ता नहीं थी, परिणामस्वरूप अनेक उच्चस्तरीय नाटकों, महाकाव्यों, गीतिकाव्यों एवं लक्षणग्रन्थों का निर्माण हुआ। महाकवि भवभूति ने भी तीन प्रसिद्ध दृश्य–काव्यों का निर्माण किया। कवि की सर्जना पर तात्कालिक स्थितियों का प्रभाव दृष्टिगत है। महाकवि भवभूति को शिक्षा विरासत में मिली थी अतः महाकवि भवभूति ने चरित्र–चित्रण को अपना प्रतिपाद्य विषय बनाया, भागवाद को अधिक महत्त्व नहीं दिया। उत्तररामचरितम्, महावीरचरितम् एवं मालतीमाधवम् में वर्णित वृत्तान्तों के आधार पर तत्कालीन आर्थिक स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

कृषि–व्यवस्था

आर्थिक जीवन के उन्नयन में कृषि का अति महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारत का विशाल जन–समुदाय प्रधानतया कृषि कर्म से ही अपना भरण–पोषण करता रहा है। भारत देश का शाश्वत एवं चिर–अभ्यस्त उद्योग कृषि तत्कालीन समाज में आजीविका का सर्वमान्य साधन था, परन्तु भवभूति का नाट्यों का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि महाकवि ने कृतियों में कृषि–सम्बन्धी सूचना बहुत ही अल्प मात्रा में उल्लिखित है। ''महाविरचरितम में दो स्थलों पर हल से खेत जोतने का उल्लेख हुआ है। 'महावीरचरितम्' के प्रथम अंक में राजा सीता से परिचय के विषय में कहते हैं कि हल से जुती यज्ञभूमि से उत्पन्न यह सीता है और दूसरी यह जनकतनया उर्मिला है।''[2] ''वाल्मीकिरामायण के बालकांड में महाराज जनक के विषय में कहा गया है कि एक बार जब वह हल से यज्ञ–भूमि जोत रहे थे, तब उन्हें सीता की प्राप्ति हुई थी। इससे स्पष्ट होता है कि कवि के समय में भूमि को हल से जोतने की प्रथा विद्यमान थी।''[3]

महाकवि भवभूति इस प्रकरण का उल्लेख करना चाहते हैं कि तत्कालीन समाज में क्षत्रियों के लिए कृषि कर्म वर्जित नहीं था और राज–समारोहों में राजा का हल चलाना एक अतिशय शोभा एवं पुण्य का कार्य माना जाता था। इस प्रकार राजा द्वारा हल चलाने की घटना ने तत्कालीन जनमानस को अत्यधिक प्रभावित किया होगा और साथ ही कृषि कर्म को भी एक असाधारण गौरव का पद मिल गया होगा।

खेतों की सिंचाई वर्षा के जल पर निर्भर करती थी किन्तु अनावृष्टि और दुर्भिक्ष से बचने के लिए सिंचाई के कृत्रिम साधनों का उपयोग किया जाता था जैसे– बावली, कूप, तडाग, तथा नदियाँ आदि का उल्लेख कवि ने नाटकों में कई स्थलों पर किया है।

''महाकवि के नाट्यों में नीवार, तूल (रुई), प्रियंगु, माष, रसोन (लहसुन), तिल, गौरसर्षप तथा शाक आदि का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि भवभूति काल में भी आज की तरह दो फसलें होती थीं।''[4] एक खरीफ की फसल, जो वर्षा के जल पर निर्भर करती थी और दूसरी रबी की फसल, जो अन्य प्रकार की सिंचाई के साधनों जैसे– जलाशय, कुआँ, नदियाँ आदि से सिंचाई की जाती थी। इससे स्पष्ट होता है कि भवभूति के समय का भारत कृषि की दृष्टि से भी सुखी और समृद्ध था।

व्यापार व्यवस्था

भारत के सामाजिक उत्कर्ष में प्रधान आर्थिक तत्त्व व्यापार का सर्वाधिक महत्त्व रहा है। अर्थ में कृषि और व्यवसाय के साथ व्यापार का भी योगदान था, जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने आर्थिक जीवन को सबल और सशक्त

बनाता था। वैदिक काल में व्यापार का कोई उल्लेखनीय विकास नहीं हुआ था क्योंकि उस समय आर्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था में थे। उत्तरवैदिक काल में कृषि व्यवसाय का उत्कर्ष हुआ। नगरों में कृषि से उत्पन्न अन्नों और व्यवसायों से निर्मित वस्तुओं का अपना प्रारम्भ हुआ जो तत्कालीन समाज के नागरिकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे। इस प्रकार वस्तुओं के क्रय–विक्रय से व्यापार का उदय हुआ।

व्यापार करने वाले को पणि, वणिज, वणिक, श्रेष्ठी तथा नेगम आदि कहा जाता था। बौद्ध काल में व्यापार की यथेष्ट उन्नति हुई थी। मौर्य युग में व्यापार का अभूतपूर्व विकास हुआ था। ''कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में तत्कालीन आर्थिक जीवन और व्यवस्था का चित्रण किया है। उसके अनुसार व्यापार के निमित्त बाजार में बेची जाने वाली वस्तु 'पण्य' कही जाती थी तथा व्यापार की देख–रेख के लिए राज्य की ओर से जो सबसे बड़ा अधिकारी नियुक्त किया जाता था, उसे 'पण्याध्यक्ष' की संज्ञा दी गई थी।"[5] गुप्त युग में आंतरिक व्यापार श्रेष्ठी, सार्थवाह, कुलिक और निगम के माध्यम से संगठित और व्यवस्थित होता था। विभिन्न वस्तुएँ क्रय और विक्रय की जाती थीं तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाई जाती थीं। जो अपनी वस्तुओं को घोड़ों, बैलों या अन्य पशुओं अथवा रथों पर लादकर समूह में एक स्थान पर पैदल जाते–आते थे तथा क्रय–विक्रय करते थे, उन्हें सार्थवाह कहा जाता था। "महाभारत में व्यापार को लौकिक जीवन का आधार स्वीकार किया गया है।"[6] "मुख्य रूप से युवक व्यापार करते थे। युवा व्यापारी देशान्तरों में व्यापार कर अपने वैभव का विस्तार करते थे।"[7]

भवभूति काल में अन्तर्देशीय व्यापार के साथ–साथ वैदेशिक व्यापार भी होता था। चीन देश से तत्कालीन भारत का व्यापारिक सम्बन्ध था तथा वहाँ से रेशमी कपड़े आयातित किये जाते थे। कवि ने मालतीमाधवम् में चीनांशुक नामक रेशमी वस्त्र का उल्लेख किया है। खाद्यान्न–वस्तुओं का भी आयात किया जाता था। "महावीरचरितम् में सेनापति प्रहस्त राक्षसराज रावण से कहता है कि सानुज मानव शिशु ने आपकी लंका नगरी पर घेरा डाल रखा है, जिससे मित्रों से प्राप्त होने वाली सहायता तथा खाद्यान्न– सामग्रियों का आना भी रुक गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि भवभूति काल में आवश्यक वस्तुओं का आयात किया जाता था।"[8]

राष्ट्र की आर्थिक यातायात के शीघ्रगामी साधनों पर निर्भर करता है। उन दिनों आवागमन के मुख्यतः स्थलमार्ग प्रयुक्त होते थे। नगरों में चौड़े और व्यवस्थित मार्ग बने थे जिनकी सावधानी से देखभाल की जाती थी। मानव अपनी सुख–सुविधा के लिए वाहन का उपयोग सदा से ही करता रहा है। सामाजिक सम्पन्नता के अनुरूप ही वाहनों में भी अन्तर रहा है। राजपरिवार, सामन्त तथा श्रेष्ठिगण वाहनों का प्रयोग करते थे। भवभूति के नाट्यों में यातायात के विषय में बहुत अधिक वर्णन तो नहीं मिलता परन्तु घोड़ा, गज, रथ, नाव तथा विमान आदि शब्दों से इन यातायात–व्यवस्था की कल्पना की जा सकती है।

भवभूति काल में अश्व सबसे तीव्रगामी वाहन था। युद्ध में अश्वबल का सबसे अधिक प्रयोग होता था। रथों को अश्वों द्वारा खींचा जाता था। "उत्तररामचरितम् में चन्द्रकेतु सुमन्त्र के द्वारा हाँके जाते हुए दौड़ते हुए वेगयुक्त घोड़ों वाले रथ से आ रहे हैं।"[9] सैनिक कवच, मृगचर्म और शस्त्र–अस्त्र आदि धारण कर युद्ध के लिए रथारूढ़ होते थे। रथ एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए सुविधाजनक सवारी था। 'उत्तररामचरितम्' में राजा राम ने सीता के दोहद पूर्ति के लिए बिना किसी रुकावट के चलने वाला रथ लाने की आज्ञा दी थी। रथ पर आरूढ़ योद्धा पैदल योद्धा से युद्ध नहीं करते थे। रथ लोहे के भी बनते थे जिसको खच्चर खींचते थे। "कवि ने उत्तररामचरितम् में रावण के लौहनिर्मित रथ का उल्लेख किया है, जो जटायु द्वारा तोड़ा गया था।"[10]

रथ चलाने वाले को 'सारथी' कहा जाता है। "महावीरचरितम में रथारूढ़ राजा कुशध्वज और उनके सारथी तथा दो कन्याओं का उल्लेख आता है।"[11] कवि ने रथारूढ़ सपरिवार इन्द्र और उनके सारथी मातलि का वर्णन किया है।

यातायात में हाथी का स्थान भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं था। "भवभूति ने द्विप, मातंग, दन्ती, द्विरद, करी, गज इत्यादि शब्दों को अभिहित किया है। युद्ध में गजबल का भी प्रयोग किया जाता था।"[12]

नदियों को पार करने के लिए नावों का प्रयोग किया जाता था। महाकवि भवभूति ने महावीरचरितम् में नाव का उल्लेख किया है। "महावीरचरितम् में कवि ने पुष्पक विमान का उल्लेख किया है। उत्तररामचरितम् में रामचन्द्र

शम्बूक का वध करने के लिए पुष्पक विमान पर बैठ कर गये थे।"[13] इससे स्पष्ट होता है कि भवभूति काल में यातायात के साधन के रूप में, अश्व, रथ, खच्चर, हाथी, नौका तथा विमान आदि का प्रयोग किया जाता था।

सड़कों और पुलों के निर्माण की कार्यप्रणाली का भवभूति ने विशद वर्णन किया है। उत्तर भारत और दक्षिण भारत (लंका) के बीच जिस सेतु (पुल) का निर्माण किया गया उसका वर्णन और भी विलक्षण है। वानरों का पराक्रम श्रेष्ठ है। वानरों द्वारा लाये गये पर्वतों के टुकड़े, जो उनके पुण्य से समुद्र के पानी पर तैरते हैं के द्वारा सेतु बनाया गया था। इस प्रकार वह पुल बनकर तैयार हो गया।

कर व्यवस्था

महाकवि भवभूति के नाट्यों में कर प्रणाली का उल्लेख नहीं है। तत्कालीन समाज में राजा की आय का श्रोत कर ही होता था। उसे अपने सामन्तों से भी उपहार मिलते रहते थे। कृषकों से राजा भूमि–कर लेता था, जिसके लिए ग्रामभोजक नामक अधिकारी की नियुक्ति की जाती थी। गौतम ने उत्पादक का 1/6 हिस्सा राज–भाग के रूप में माना है। "आचार्य मनु ने लिखा है कि राजा उपज का छठाँ, आठवाँ या बारहवाँ भाग (कर) प्राप्त करता था।"[14] बौधायन और वसिष्ठ ने लिखा है कि राजा उत्पादन का छठाा भाग प्राप्त करने का अधिकारी था।

"कौटिल्य ने तेरह (13) प्रकार के करों का उल्लेख किया है, जिसमें भाग नामक कर अन्न के उत्पादन पर दिया जाने वाला राजकर था।"[15] महाकाव्य काल में उपज के भाग को राजकर के रूप में स्वीकार किया गया है। समस्त राष्ट्र का स्वामी होने के नाते राजा अनेक प्रकार के करों का स्वामी था। महाभारत के अनुसार 1/10 भाग से लेकर 1/6 भाग तक कृषिकर के रूप में राजकर स्वीकार किया जाता था।

भूमि–कर प्रायः देश और काल के अनुसार उपज को ध्यान में रखकर निश्चित किया जाता था। ब्राह्मण, स्त्रियों और बालकों से कर नहीं लिया जाता था। राजाओं को खानों का भी कुछ लाभांश प्राप्त होता था।

राजा दशरथ के मंत्री ब्राह्मणों और क्षत्रियों को कष्ट पहुँचाये बिना राज्य–कोष भरा करते थे। इससे प्रतीत होता है कि वैश्यों पर ही करों का अधिकतर बोझ पड़ता था, क्योंकि व्यापार और कृषि, कार्य, उनका ही कर्म था। उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट होता है कि भवभूतिकालीन समाज में भी कर व्यवस्था पूर्व की भाँति ही थी।

व्यावसायिक कर्म

भवभूतिकालीन समाज में व्यावसायिक कर्मों से सम्बद्ध होने से, व्यावसायिक जातियाँ भी विद्यमान थीं। चित्रकार, सुवर्णकार, कुम्हार, लौहकार, मूर्तिकार, रथकार, मालाकार, नौकृत तथा चर्मकार आदि जातियाँ अपने व्यवसाय से ही परिवार का भरण–पोषण करती थीं।

महाकवि भवभूति नाट्यों में चित्रकार वर्ग का उल्लेख किया है। लक्ष्मण उत्तररामचरितम् में राजा राम के राज्याभिषेक के बाद कौशल्या, अरुन्धती आदि माताओं के ऋष्यश्रृंग के आश्रम में यज्ञ में भाग लेने के लिए चले जाने तथा राजा जनक के मिथिला लौट जाने से खिन्नचित्त सीता के मनोरंजनार्थ अर्जुन नामक चित्रकार से दीवाल (भित्ति) पर अनेक चित्र चित्रित कराते हैं और सीता को उन्हें दिखाते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में चित्रकारों का व्यवसाय चित्रों को चित्रित करना होता था जो आज भी विद्यमान है। मालतीमाधवम् में सुवर्णकार का वर्णन आता है जो नाना प्रकार के आभूषणों, सोना–चाँदी इत्यादि का निर्माण कार्य करता है। महाकवि भवभूति कामदेव की उपमा सुवर्णकार से करते हैं। माधव मालती से कहता है कि मेरे चित्त में लीन की तरह, प्रतिबिम्बित हुई की तरह, लिपिबद्ध विषयीकृत की तरह, शिला आदि उत्कीर्ण रूप वाली की तरह, विरहद्रवीभूत मेरे मन में कामदेव रूप सुवर्णकार द्वारा घटित (जड़ी) हुई की तरह सम्बद्ध है।

इस प्रकार ऐसे समाज में जहाँ स्त्री–पुरुष दोनों आभूषण–प्रिय थे, यह स्वाभाविक था कि मणिकार और स्वर्णकार के व्यवसाय समृद्ध रहे होंगे। सोने के विविध कलापूर्ण आभूषण तथा विभिन्न आकार–प्रकार के मणिरत्न इस बात के प्रमाण हैं कि साने और जवाहरात की कारीगरी बहुत उन्नत अवस्था में थी। कुम्भ के उल्लेख से स्पष्ट होता है कि उस समय कुम्हारों का अस्तित्व था।

भवभूति ने धवलपट्टांशुक, रक्तवर्णांशुक तथा तूल आदि का वर्णन किया है, जिससे स्पष्ट होता है कि उस समय रेशमी और सूती दोनों प्रकार के वस्त्रों का प्रचलन था। इन वस्त्रों का निर्माण कुशल बुनकर ही करते थे। जिन्हें सूत्र–कर्म–विशारद कहा जाता था। वस्त्रों की रंगाई करने के लिए कृमिराग या लाक्षाराग का प्रयोग किया जाता था। लोहे का उपयोग तलवार, बाण की नोक, कवच, शस्त्रों आदि के निर्माण में किया जाता था। इनके निर्माण में लौहाकार प्रशंसनीय कौशल का परिचय देते थे। "महाकवि भवभूति ने महावीरचरितम् के षष्ठ अंक में लोहे की कील का वर्णन किया है,"[16] "मालतीमाधवम् में लोहे के फाटक का वर्णन आता है।"[17] इससे स्पष्ठ होता है कि तत्कालीन समाज में लोहे के विभिन्न प्रकार के उपकरण बनाये जाते थे।

तत्कालीन समाज में मूर्तियों की प्रथा भी प्रचलित थी। महाकवि भवभूति ने मालतीमाधवम् में शिव मन्दिर एवं करालादेवी के मन्दिर का उल्लेख किया है। इन मन्दिरों में भगवान् शिव की प्रतिमा एवं कराला देवी की प्रतिमा स्थापित थी। उत्तररामचरितम् में सीता की स्वर्णमयी मूर्ति का वर्णन कवि ने किया है। इन मूर्तियों का निर्माण मूर्तिकारों द्वारा ही किया जाता था। इससे स्पष्ट होता है कि मूर्तिकार मूर्तियाँ बनाकर जीविकोपार्जन करते थे। भवभूति ने रथ, माला, नाव, चर्म आदि का उल्लेख नाट्यों में किया है जिसके आधार पर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि तत्कालीन समाज में रथकार, मालाकार, नौकृत और चर्मकार आदि व्यवसायिक कर्म करने वाले लोग विद्यमान थे।

पशुपालन

कृषि और पशुपालन दोनों एक–दूसरे के पूरक धंधे थे। भवभूति कृत नाट्यों से स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में देश वनों से भरा था, जिसमें पशु स्वच्छन्द विचरण करते थ। पशु–प्रधान गाँव को घोष कहा जाता था। तत्कालीन समाज के लोग पशुपालन करते थे जो उनकी आर्थिक स्थिति में सहायक होता था।

पशुपालन में गौ–पालन का अत्यधिक महत्त्व था। गौसमूह को गौव्रज कहा जाता था। "आर्थिक दृष्टि से गौपालन का विशेष महत्त्व था। बैलों को हल चलाने के लिए काम में लिया जाता था। गौएँ पारिवारिक एवं धार्मिक क्रियाओं के लिए दूध–दही–घी प्रदान करती थीं।"[18] आज की तरह गौ का गोबर ईंधन के रूप में जलाने के काम आता था।

गौ और बैल के पश्चात् राष्ट्र के आर्थिक जीवन में घोड़े का प्रमुख स्थान था। घोड़ों की अच्छी नस्ल तैयार करने के लिए विशेष ध्यान दिया जाता था। "अश्व सेना के घोड़ों को सामरिक प्रशिक्षण दिया जाता था। आमोद–प्रमोद के कार्यों में भी घोड़ों का प्रयोग किया जाता था।"[19]

नागरिक और सामरिक दोनों प्रकार की आवश्यकताओं के लिए तथा राजकीय वैभव और समृद्धि के प्रदर्शन में हाथियों का अनिवार्य रूप से प्रयोग होता था। "अपने उदार, सौम्य और भव्य स्वरूप के लिए हाथी मूल्यवान् होते थे। हाथियों के पालन–पोषण का कार्य महावत लोग करते थे। महाकवि ने हाथी को कई शब्दों से अभिहित किया है जैसेः द्विरद, करी, करिकलभ इत्यादि।"[20]

पशुओं से प्राप्त होने वाले पदार्थों से अनेक कुटिर–उद्योग चलाये जाते थे। दुग्ध पदार्थ से जैसे दही, घी इत्यादि बनने का कुटीर–उद्योग प्रचलित था। उस समय शाकाहार के व्यापक प्रचलन के कारण दुग्ध और दुग्ध से बने पदार्थों की अत्यधिक मांग रही होगी।

व्याघ्र–चर्म और मृग–चर्म का प्रयोग पहनने, बिछाने में किया जाता था, जिससे चमड़ा बनाने की कला का ज्ञान प्रामाणित होता है। शय्या, रथ और सिंहासन पर वे बिछाये जाते थे। धार्मिक क्रियाओं में मृग–चर्म का ही अधिकतर प्रयोग किया जाता था। इस प्रकार तत्कालीन समाज के मध्यमवर्गीय व्यक्ति, पशुपालन से भी जीविकोपार्जन करते थे।

वन और औषधि

"तत्कालीन समाज के लोग अरण्यों से जीविकोपार्जन करते थे और उससे आर्थिक लाभ उठाते थे। भवभूति

के समय में भारत का अधिकांश भाग जंगलों से व्याप्त था।"[21] वनों पर राज्य का अधिकार होता था और समाज के लिए उनका अत्यधिक महत्त्व था। पशुओं के चरने के लिए वनों का उपयोग किया जाता था। ईंधन का वन ही स्त्रोत थे। गृहों, रथों, सिंहासनों, शयनासनों, यज्ञ–संबंधी सामग्रियों इत्यादि के निर्माण में वनों का अधिक से अधिक उपयोग किया जाता था। आम्र, चन्दन, जम्बू, तमाल तथा साल (अर्जून) वृक्ष लकड़ी की दृष्टि से विशेष उपयोगी माने जाते थे।

वनों से मधु प्राप्त किया जाता था। वनों के फल–मूलों को वनजीवियों तथा अरण्यवासी तपस्वियों के लिए आहार की दृष्टि से बड़ा महत्त्व था। वनों के वृक्षों से नारियल का फल, तमाल जैसे पत्ते और खजूर जैसे मेवे प्राप्त होते थे। चंदन और केसर जैसे पदार्थ जिनका नागरिकों के सौन्दर्य–प्रसाधनों में उपयोग किया जाता था। वनवासी मुनि लोग पेड़ों की छालों का वल्कल–वस्त्र के रूप में उपयोग करते थे।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि भवभूति के समय में भारतवर्ष अरण्यों से भरा था। अरण्यों में औषधियाँ भी होती थीं। महाकवि ने नाट्यों में औषधि का उल्लेख कई स्थलों पर किया है। कई प्रकार की जड़ी–बूटियाँ होती थीं, जिनमें औषधि के गुण होते थे। संजीवनी–बूटी भी एक औषधि थी। "आयुर्वेद में औषधि–निर्माण की एक विधि पुटपाक थी। महाकवि भवभूति ने उत्तररामचरितम् में पुटपाक का उल्लेख किया है।"[22] महावीरचरितम् में लक्ष्मण राम से कहते हैं कि जिस सीता को आप औषधि की भाँति महारण्य में ढूँढ रहे हैं उन्हें एवं मेरे प्राणों को राक्षसराज रावण ने हर लिया है। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय वनों से विविध जड़ी–बूटियों का अन्वेषण किया जाता था जो औषधि के रूप में प्रयुक्त की जाती थीं। "महाकवि ने मालतीमाधवम् के षष्ठ अंक में रसायन का उल्लेख किया है।"[23] इस प्रकार स्पष्ट होता है कि भवभूति के समय में वन एवं वनस्पतियाँ लोगों का आर्थिक सहायता प्रदान करते थे।

निष्कर्ष

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि भवभूति के समय में भारत आर्थिक दृष्टि से एक सुखी, समृद्ध और वैभवशाली राष्ट्र था। प्रजा धन, धान्य, पशु आदि जीवन की सुख–सुविधाओं से सम्पन्न थे। प्रजा का जीवन–स्तर अत्यन्त ऊँचा था, वह बहुमूल्य वेश–भूषा धारण करती और उत्तम खान–पान का सेवन करती थी। लोग पुण्यशाली, दीर्घजीवी, स्वस्थ और प्रसन्नचित्त रहते थे। वे अपने ही अर्जित संपत्ति से संतुष्ट रहते तथा लोभवश अधिक की प्राप्ति के लिए लालायित नहीं होते थे।

संदर्भ सूची

1. राजतरंगिणी, 4/144
2. म0च0, 1/20
3. वा0 रामायण, बालकाण्ड
4. उ0च0, 4/1
5. अर्थशास्त्र, 2/16
6. महाभारत शान्तिपर्व, 89/43
7. मृच्छकटिक, द्वितीय अंक, पृ. 97
8. म0च0 6/19
9. उ0च0, 5/1
10. उ0च0, 3/43
11. म0च0, 1/9 के पश्चात्

12. उ0च0, 3/15
13. म0च0, 7/4 के पश्चात्
14. मनु0, 7/30
15. अर्थशास्त्र, 2/6
16. म0च0, 6/16
17. मा0मा0 तृतीय अंक
18. उ.च0, 6/25
19. उ0च0, 5/12
20. उ0च0, 5/5, 5/12
21. मा0मा0, 6/12
22. उ0च0, 3/1
23. मा0मा0, 6/8

****